शुभसंकल्प

(लेखक श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम)

संसार में आत्मोन्नति चाहने वालों के लिये सर्वप्रथम साधन शुभ संकल्प है । संकल्प मन का विषय है । मन के आधार पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर है । सुख, शान्ति अथवा आनन्द की प्राप्ति को ही उन्नति कहते हैं । सुख भी दो प्रकार का है जिसको बाह्य, आभ्यन्तरीय अथवा लौकिक, पारलौकिक कहते हैं । इन्द्रिय जन्य सुख लौकिक है जिह्वा से रसमय स्वादु पदार्थों का सेवन करना, नासिका से सुगन्धित वस्तु को सूंघना, नेत्रों से अच्छे अच्छे दृश्य देखना, कर्णों से मनोहर गीत वादन आदि शब्द सुनना ये सब इन्द्रिय संसर्ग जन्य क्षणिक सुख है । इन विषयों का सुख भी मन के आधीन है । जब तक मन चाहे तभी तक ये अच्छे लगते हैं, मन के उपराम होने पर कैसे ही स्वादु व्यंजन रखे रहो खाने की इच्छा नहीं होगी । ऐसे ही इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होने वाला विषयों का सुख मन का ही विषय है न्यायशास्त्र में लिखा है :—

सुख दुःखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः ।

सुख दुःख, शीत उष्ण, कड़ा मीठा, सुरूप कुरूप, भला बुरा, हानि लाभ की प्राप्ति का साधन इन्द्रिय मन है, (मननं मनः) मानने का नाम मन है । योग शास्त्र में इसकी पांच वृत्तियें मानी हैं ।

वृत्तयः पंचतयः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ।
प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः ॥

वृत्तियें पांच प्रकार की हैं क्लिष्ट (राग द्वेषादि क्लेषों की हेतु) और अक्लिष्ट (राग द्वेषादि क्लेशों को नाश करने वाली) प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति ये इनके नाम हैं । बाह्य पदार्थों की संख्या का अनिश्चय होने से उनके संयोग से उत्पन्न होनेवाली वृत्तियें भी असंख्येय हैं परन्तु उनको पांच विभाग में बांट दिया है । जब ये वृत्तियां रागद्वेष आदि क्लेश उत्पन्न करती हैं तभी राग से सुख द्वेष से दुःख उत्पन्न होते हैं । राग द्वेष के आधीन उनको प्राप्त करने वा हटाने को शुभ अशुभ कर्म करता है इसके फल स्वरूप बंधन में पड़ता है । अक्लिष्ट वृत्तियां अभ्यास, वैराग्य की दृढ़ता से उत्पन्न होती हैं । इसी का नाम शुभ संकल्प है । अक्लिष्ट वृत्तियों का उत्पन्न करना ही शुभ संकल्प और क्लिष्ट करना अशुभ संकल्प है । जैसे जैसे संकल्प किये जायंगे वैसा ही आचरण किया जायगा जैसा आचरण होगा तद्रूप ही फल (परिणाम) होगा । चित्त की बनावट ऐसे ढंग की है कि जैसा जैसा संग होगा उसी प्रकार का चिन्तन करेगा उसी के आकार को प्राप्त हो जायगा । जैसा कि महात्मा सुन्दरदास जी ने कहा है :—

जो मन नारि की ओर निहारत तो मन होत है नारि को रूपा ।
जो मन काहू से क्रोध करे तब क्रोधमयी हो जाय तद्रूपा ।
जो मन माया ही माया रटै नित तो मन डूबत माया के कूपा ।

सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा ॥

तथा च :—

सति सक्तं नरो ह्याति सद्भावं ह्येक निष्ठया ।
कीटको भ्रमरीं ध्यायं भ्रमरत्वाय कल्पते ॥

जैसे कीड़ा भ्रमरी का ध्यान करने से तद्रूप हो जाता है ऐसे ही मनुष्य सद्भावनाओं (मैं शुद्ध हूं, बुद्ध हूं पवित्र हूं सत् चित् आनन्द स्वरूप हूं, अजर हूं, अमर हूं निर्विकार हूं, अखण्ड सुख का भण्डार हूं, मैं सब का मित्र हूं, मेरा शत्रु कोई नहीं । मेरी शक्ति महान् है, मुझे कर्म लिपायमान नहीं होते, मैं सदा मुक्त हूं इत्यादि) का एक निष्ठा से ध्यान करने से तद्रूप हो जाता है । जब संसार में दोनों मार्ग हमको प्रत्यक्ष दीखते हैं तो क्यों न हम अच्छे मार्ग का अनुसरण करें । जब हमारे आधीन है कि हम शुभ संकल्प करें तो उन्नति और अशुभ करें तो अवनति होती है तो क्यों जान बूझ कर अपने पांव में कुल्हाड़ी मारें । जब हम विषयों के क्षणिक सुख को ही सबसे उत्तम सुख समझते हैं तभी उनमें आसक्त होत हैं, और जब थोड़ी देर के अनन्तर उनका परिणाम दुःख मिलता है तो उन विषयों से घृणा हो जाती है फिर थोड़े काल में उनका चिन्तन करते हैं इसी का नाम अशुभ संकल्प है । इसके निरोध के लिये सबसे मुख्य साधन इससे मुक्त होने का दृढ़ विचार है । यदि हम दृढ़ विचार कर लें कि हम को शुभ संकल्प वाला होना है तो हम उसके लिये उपाय सोचेंगे । हमको इसके लिये अनेक उपाय मिलेंगे जिनका अभिप्राय होगा कि मन को वश में करना । बिना मन के वश किये हम शुभ संकल्प नहीं कर सकते । मन को वश में करने के लिये भगवान् की भक्ति करनी श्रेयस्कर है जो नव प्रकार की है यथा — श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य भाव, सखा भाव, आत्म निवेदन । भगवत् कथा श्रवण में मन लग जाने से बुरे संकल्प नहीं उठ सकते । यद्यपि पहले पहले मन नहीं लगेगा तथापि शनैः शनैः प्रतिदिन श्रवण करने से ऐसी दशा प्राप्त हो जाती है कि मन उसी में तल्लीन हो जायगा और अन्त में इसी से मोक्ष की दशा प्राप्त हो जायगी, जैसे महाराज परीक्षित को हुई । इसी प्रकार कीर्तन में भी मन का विषयों से पूर्ण निरोध होकर भगवत् के दर्शन हृदय में होने लगते हैं जैसे नारद जी ने कहा है :—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥

तीर्थपाद — साधु सन्त, पवित्र स्थान, विद्वान् हैं चरण जिनके ऐसे भगवान् अपने गुणगान सुनने को अति उत्कण्ठित हो मेरे गाते समय बुलाये हुये के समान हृदय में दर्शन देते हैं । इसी प्रकार उक्त नवधा भक्ति के एक निष्ठा से आचरण करने से गुरुमन्त्र के जप से, ध्यान से स्वाध्याय से, प्राणायाम (योग) से मन का निरोध होने लगता है उस अवस्था में साधक के शुभ संकल्प होते हैं । इसके लिये अधिक कहने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य के शुभ संकल्पों से क्या नहीं हो सकता । मेरी अनुमति में तो भगवान् से मिलने के जिन जिन (मज्जबों) धर्मों में जितने भी मार्ग हैं सब में सर्व प्रथम सीढ़ी शुभ संकल्प है । ज्ञानी, ध्यानी, योगी, जपी,

तपी, इन सब को प्रथम अपने मन को इष्ट वस्तु में लय करना पड़ता है जैसा कि श्री गीताजी में कहा है :—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञान निर्धूत कल्मषाः ।

ध्यानी को अपने प्रेमी के ध्यान में मन को लय करना पड़ता है । योगी को भी हृदय कमल में ओंकार का ध्यान करने में मन को निर्विषय करना पड़ता है । एवं जपी को मन्त्र जप में, तपी को तप में मन का शुभ वा अशुभ संकल्पों का नाश करना पड़ता है । अब प्रश्न होता है कि जब मन का नाश ही हो गया तो संकल्प होंगे ही नहीं इसका उत्तर यह है कि उक्त मनोनाश की अवस्था सिद्ध पुरुषों को ही होती है, साधन अवस्था में एकाएक ऐसा होना असम्भव है । अतएव ज्ञान की सात भूमिकाओं में प्रथमा भूमिका शुभेच्छा ही मानी गई है । शास्त्र विहित कर्मों के आचरण में भी सर्व प्रथम कर्म शुभ संकल्प होता है । किसी भी उच्च से उच्च कार्य को करने पर यदि संकल्प अशुभ हैं तो निष्फल है । संकल्प विकल्पात्मकं मनः (मनः सृष्टिं कुरुते) के आधार पर तो स्पष्ट मालूम पड़ रहा है कि यह जगत् संकल्प जन्य है । विहित कर्मों का अनुष्ठान शुभ संकल्प के लिये है, अविहित कर्मों का निषेध अशुभ संकल्पों के निराकरण के लिये है । जैसा कि निम्न श्लोक में कहा है कि :—

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।

चित्त के शुद्ध होने के लिये कर्मों का विधान है अन्यथा (नास्त्यकृतः कृतेन) अकृत जो आत्मा है वह कृत (कर्म) से प्राप्त नहीं हो सकता । अस्तु यह बात भी निर्विवाद सिद्ध है कि जितना पाप उतना ताप । जितने अशुभ संकल्प किये जायंगे उतना हि दुःख, चंचलता, क्षुब्धता बेचैनी मन में बढ़ती जायगी, हम किसी का अनिष्ट चिन्तन ही न करेंगे तो शरीर से किसी तरह बना हुवा भी वह कर्म दोष नहीं माना जायगा ।

मनसा चिन्तितं कर्म कायया विनिवर्तते ।

मन से सोचा हुवा कर्म शरीर से किया जाता है इसलिये जैसी संकल्प सृष्टि होगी वैसा ही भावी जीवन होगा । वेद में एक शिव संकल्प सूक्त ही है । जो मुमुक्षुओं के लिये परम उपयोगी है तथा जो भगवद्भक्ति आश्रम की प्रार्थना में निश्चित है जिसका अनुवाद एक विद्वान् ने हिन्दी भाषा में कविता बद्ध अत्यन्त मनोहर सरल शब्दों में अपनी सुलेखनी द्वारा इस प्रकार किया है ।

जाग्रत स्वप्न दशाओं में जो दूर भागता रहता है ।
आत्म प्रेरित इन्द्रिय गण को ज्योति सदा जो देता है ॥
वह मेरा मन निशिदिन भगवन् शुभ ही शुभ संकल्प करे ।
श्रेष्ठ विचारों से युत होकर दुष्ट गुणों को दूर करे ॥
ज्ञानी कर्मवीर जिस मन को सभी तथा शुभ कर्मों में ।
सदा लगाते जो अद्भुत् है अन्दर गुप्त शक्ति सब में ।

वह मेरा मन (उक्त प्रकार से सब में समझना) ॥
उत्तम ज्ञान बोध का साधन जो है अमृत ज्योति समान ।
जिसके बिना न कुछ होता है सब के अन्दर जिसका स्थान ॥
भूत भविष्यत् वर्तमान सब जिस मन ने हैं ग्रहण किये ।
सप्तेन्द्रिय होता जिस कारण ज्ञान यज्ञ को रचे हुये ॥
जिस मन के आश्रय से होता वेदों का सारा विज्ञान ।
है विचार केन्द्रित जिस मन में रथ नाभि में आर समान ॥
इन्द्रियरूपी घोड़ों को जो सारथि सम ले जाता है ।
हृदयस्थित जिस मन का अनुपम वेग न नापा जाता है ॥

आशा है इस वेद के सूक्त से पाठक समझ गये होंगे कि मन का साम्राज्य कहां तक विस्तृत है । ऐसे पराक्रमी सम्राट् का वश में करना यद्यपि बड़ा कठिन और दुःसाध्य कार्य है तथापि मनुष्य का सब से पहला कर्तव्य यही है कि अपने विचारों को शुभ व कल्याणमय करे । निरन्तर उद्योग करने वाले के लिये कोई काम असम्भव नहीं रहता । जिनकी इच्छा दूसरों को दुःख देने की रहती है, जिनके विचार दूसरों के दोषों को ही निरन्तर अवगाहन करते हैं, जिनकी दुराशा दूसरों का अनिष्ट ही सोचती रहती है, उनका मन दूसरों के दोष देखने से दूषित हो जाता है, उनकी इच्छा निष्फल पड़ जाती है, उनके विचार दुष्ट हो जाते हैं । उनके साथी अच्छे मनुष्य नहीं बनते । कौवे की कुचेष्टायें जिस प्रकार कोयल का कुछ बिगाड़ नहीं कर सकती इसी तरह वे सत्पुरुषों का बिगाड़ नहीं कर सकते । ऐसे मनुष्य कौओं की भांति जग में निन्दित होते हैं ऐसे पुरुष परद्रोही कहाते हैं तथा जो पुरुष संसार के पदार्थों में इन्द्रिय तृप्ति के लिये आसक्ति करता है एवं निरन्तर आत्महानिकर विषयों का चिन्तन करता है वह आत्मद्रोही कहाता है । द्रोह दूसरों से तथा अपने से दोनों ही हानिकर रहैं । सुतरां दूसरों के लिये श्रेष्ठ इच्छा रखना एवं अपने लिये श्रेष्ठ हितकर विचारों का बनाना ही शुभ संकल्प है । जिससे कि चारों ओर सुख व शान्ति का प्रसार हो, अज्ञान जो कि निराधार हो उसका मूलतः संहार हो, प्रकाशमय विहार हो दूर अन्धकार हो, हृदयपटल पर सद्भावनाओं की गुञ्जार हो, त्रिविध दुःख छारछार हो, ज्ञान का संचार हो, दिल में समुद्गार हो सुखमय संसार हो, आनन्द का न पारावार हो, फिर क्या है देखो सब शुभ ही शुभ विचार हों ।

ओं शातिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!